ममता कालिया के उपन्यास 'दौड़' का देशकाल, वातावरण और परिवेश

–डॉ॰ कामना कौशिक

यह उपन्यास भारत की अद्यतन आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों पर आधारित है। इसमें विशेष रूप से विदेशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा भारत में आकर आर्थिक लाभ कमाने के लक्ष्य से यहाँ बड़े–बड़े शॉपिंग सेंटर, मॉल, व्यापारिक प्रबन्धन की शिक्षा देने वाली संस्थाओं की स्थापना करके उनका संचालन करना है, ताकि उनके द्वारा आरम्भ किए गए व्यापारों में उन्हें अधिकतम लाभ प्राप्त हो सके। इस प्रकार से भारत में आज़ादी से पहले योरप से ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने आकर जिस तरह से अपने पैर इस देश में पसारे थे, ये नई कम्पनियाँ भी आजकल उसी कम्पनी का पुनरावतार जान पड़ती हैं या कही जा सकती हैं। किसी भी विधा से सम्बन्ध रखने वाली कोई भी साहित्यिक रचना हो, वह जिस प्रकार अपने देशकाल और वातावरण से कटकर कदापि नहीं रह सकती है, ठीक उसी प्रकार किसी जीवन–सम्बन्धी दर्शन, दृष्टि, प्रयोजन या लक्ष्य से कट कर कदापि नहीं रची जा सकती है। यदि उसमें ऐसी निरुद्देश्यता मिलती है, तो उसके लेखक की रचनाधर्मिता पर ही प्रश्न–चिह्न लगाया जा सकता है। यह एक ऐसा देश–काल–सापेक्ष तथ्य है, जिसके अपवाद बहुत कम या नगण्य ही होंगे। आधुनिक भाव–बोध और वैचारिकता वाली साहित्यिक रचनाओं में कई बार प्रयोजनहीनता या निरुद्देश्यता का ठीक उसी प्रकार भ्रम भी हो जाया करता है, जिस प्रकार मॉडर्न पेंटिंग के मूलभूत नियम आदि न जानने वाले चित्राकला–प्रेमी भी कई बार इस विधा की चित्राकारी को निरुद्देश्य मानने की भूल कर जाते रहे हैं। इस उपन्यास में आरम्भ से ही सरकारी और ग़ैरसरकारी नौकरियों के पीछे दौड़ने वाले नई पीढ़ी के युवक–युवतियों के बारे में विवरण दिया गया है। पुरानी रूढ़िवादिनी पीढ़ी के लोगों की अपेक्षा यह नई पीढ़ी अपनी वैज्ञानिक दृष्टि, वैचारिकता और सोच आदि के स्तर पर भारी जोखिम उठाकर रात–दिन एड़ी–चोटी का पसीना एक कर रही है और जहाँ तक हो सकता है, अपने घर के सभी सुख–आराम छोड़–छाड़ कर व्यापारिक क्षेत्राों से जुड़ी इन कम्पनियों में काम करने के लिए इस पीढ़ी के युवा जन जा रहे हैं। कहीं–कहीं उनके विचारों से पुरानी पीढ़ी के लोगों के पुरातनपन्थी विचारों से टकराव और तनाव भी देखने को मिलता है। विदुषी लेखिका ममता कालिया ने इस उपन्यास में इसी प्रकार के आर्थिक और सामाजिक उद्देश्यों को आधार बनाया है। समग्रतः यह उपन्यास सोद्देश्य तो है, इसके साथ ही इसमें वर्तमानकालीन परिवर्तमान भारत के मानचित्रा की अनेक रेखाओं को भी सफलतापूर्वक गहराया जा सका है। यद्यपि देशकाल और वातावरण नामक औपन्यासिक तत्त्व की कसौटी पर यह लघु उपन्यास बहुत खरा नहीं उतरता है, तथापि एकदम अछूते विषय पर रचित होने के कारण इस उपन्यास की प्रासंगिकता और समय–संगति निर्विवाद ही ठहरती है। अब हम कतिपय शीर्षकों के अन्तर्गत इस उपन्यास के देशकाल और परिवेश–सम्बन्धी विशेषताओं का सोदाहरण विवेचन करने की यत्किंचित् चेष्टा करेंगे :––

1. व्यापारिक प्रशासन–विषयक ज्ञान की आवश्यकता : इस उपन्यास में कथानायक पवन के पिता चाहते थे कि उनका बड़ा बेटा इधर–उधर की बेकार उपाधियाँ प्राप्त करके अपने 'जीवक' (कैरियर ब्लंममत) को नष्ट करने की अपेक्षा एम॰बी॰ए॰ (मास्टर ऑफ़ बिज़नेस एडमिनिस्ट्रेशन) की व्यावसायिक उपाधि प्राप्त करके व्यापार से सम्बन्ध रखने वाली एक अच्छी–सी नौकरी पर नियुक्त हो जाए और अपने घर, परिवार और वंश का नाम उज्ज्वल करे। उनकी यह इच्छा पूरी भी हो जाती है। उपन्यास के विवरण के अनुसार वह नौकरी करने के लिए अपने इलाहाबाद नगर से अठारह सौ किलोमीटर दूर अहमदाबाद नगर में आ जाता है। उपन्यास में द्वितीय अध्याय के आरम्भ में ही कहा गया है कि, 'एम.बी.ए. के बाद कहीं–न–कहीं तो उसे जाना ही था। उसके माता–पिता अवश्य चाहते थे कि वह वहीं उनके पास रहकर नौकरी करे, पर उसने कहा "यहाँ मेरे लायक़ सर्विस कहाँ ? यह (इलाहाबाद) तो बेरोज़गारों का शहर है। ज़्यादा–से–ज़्यादा नूरानी तेल की मार्केटिंग मिल जाएगी।" माँ–बाप समझ गए थे कि उनका शिखरचुम्बी (=उच्चाकांक्षी) बेटा कहीं और बसेगा।"[1]–

स्वयं लेखिका ने कथानायक पवन के सम्बन्ध में इसी सन्दर्भ में यह लम्बा–चौड़ा विवरण प्रस्तुत किया है, 'फिर यह नौकरी पूरी तरह से पवन ने स्वयं ढूँढी थी। एम॰बी॰ए॰ के अन्तिम वर्ष की जनवरी में जो चार–पाँच कम्पनियाँ उनके संस्थान में आई थीं, उनमें भाईलाल (एक प्रसिद्ध कम्पनी का नाम) भी थी। पवन पहले इंटरव्यू में ही चुन लिया गया। भाईलाल कम्पनी ने उसे अपनी एल॰पी॰जी॰ यूनिट में प्रशिक्षु सहायक मैनेजर बना लिया। संस्थान का नियम था कि अगर एक इंटरव्यू में छात्रा का चयन हो जाए, तो वह बाकी के तीन नहीं दे सकता। इससे ज़्यादा छात्रा लाभान्वित हो रहे थे और कैम्पस पर परस्पर स्पर्धा घटी थी।'[2]

इस प्रकार इस उपन्यास में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में अच्छे पद प्राप्त करने के प्रयोजन से युवकों को व्यापारिक प्रशासन–विषयक तकनीकी ज्ञान को अर्जित करना आवश्यक बताया गया है।

2. मध्यवर्गीय जीवन और नगरों का वातावरण : उपन्यास में आगे महानगरों के घरों का एक ख़ाका खींचते हुए कहा गया है, "हर घर के आगे एक अदद टाटा सूमो खड़ी है। मारुति 800 क्यों नहीं ? तर्क–शक्ति से तय किया जा सकता है कि यह परिवार की ज़रूरत और आर्थिक हैसियत का परिचय–पत्रा है। पर यादें हैं कि लौट–लौट जाती हैं सिविल लाइंस, एलगिन रोड और चैथम लाइंस की सड़कों पर, जहाँ माचिस की डिबियों जैसी कारें और स्टियरिंग के पीछे बैठे नमकीन चेहरे तबियात तरोताज़ा कर जाते। ओफ, नए शहर में सब कुछ नया है। यहाँ दूध मिलता है, पर भैंसे नहीं दिखतीं। कहीं साइकिल की घंटी टनटनाते दूध वाले नज़र नहीं आते। बड़ी–बड़ी सुसज्जित डेरी–शॉप हैं, एयरकंडीशंड, जहाँ आदमकद चमचमाती स्टील की टंकियों में टोंटी से दूध निकलता है। ठंडा पास्चराइज्ड। वहीं मिलता है दही, दूध, पेड़ा और श्रीखंड।'[3]

इससे आगे भी लिखा गया है, 'यही हाल तरकारियों का है। हर कॉलोनी के गेट पर सुबह तीन–चार घंटे एक ऊँचा ठेला तरकारियों से सजा खड़ा रहेगा। वह घर–घर घूमकर आवाज नहीं लगाता। स्त्रियाँ उसके पास जाएँगी और खरीदारी करेंगी। उसके ठेले पर खास और आम तरकारियों का अम्बार लगा है। हरी शिमला मिर्च, तो लाल और पीली भी। गोभी है, तो ब्रोकोली भी। सलाद की शक्ल का थाई 'कैबेज' भी दिखाई दे जाता है। खास तरकारियों में किसी की भी क़ीमत डेढ़ दो सौ रुपए किलो से कम नहीं। ये बड़े–बड़े टमाटर एक तरफ रखे हैं कि दूर से देखने पर प्लास्टिक की गेंद लगते हैं। ये टमाटर क्यारी में नहीं, प्रयोगशाला में उगाए गए लगते हैं। क़ीमत दस रुपए पाव।

टमाटर का आकार इतना बड़ा है, कि एक पाव में एक टमाटर ही चढ़ सकता है। दस रुपए का एक टमाटर।'[4]–

3. प्रदूषण की समस्या : इस उपन्यास में गौण रूप से देश में चारों ओर फैले और दिनोंदिन बढ़ते ही चले जा रहे प्रदूषण की समस्या की ओर भी संकेत मात्रा ही किया जा सका है। एक स्थल पर जब रोजविन्दर नाम की कर्मचारी कभी एलिस ब्रिज के ट्रेफिक–जाम के चित्रा अपने कैमरे से उतारती है और कभी बाज़ार में जेनरेटर से निकलने वाले धुएँ का जायज़ा लेती नज़र आती है, तब उस पर कटाक्ष करते हुए उसी का साथी दीपेन्द्र उससे पूछता है, "रोजू, तुम्हारी रिपोर्ट से क्या होगा। क्या टैम्पो और जेनरेटर धुआँ छोड़ना बन्द कर देंगे ?"

इस पर रोजू सिगेरट का आखिरी कश लेकर उसका टोटा पैर के नीचे कुचलती हुई ये शब्द कहती है, "माई फुट। तुम तो मेरे जॉब को ही चुनौती दे रहे हो। मेरी कम्पनी को इससे मतलब नहीं कि वाहन धुएँ के बग़ैर चलें। उसकी योजना है हवा शुद्धिकरण (शुद्ध वर्तनी है शुद्धीकरण) संयंत्रा बनाने की। एक हर्बल स्प्रे भी बनाने वाली है। उसे एक बार नाक के पास स्प्रे कर लो, तो धुएँ का प्रदूषण आपके साँस के अन्दर नहीं जाता।" अब पवन बीच में टपकते हुए यों पूछता है, "और जो प्रदूषण आँख और मुँह के रास्ते जाएगा वह ?"

इस पर रोजविन्दर कहती है, "तो मुँह बन्द रखो और आँख में डालने को आई –ड्रॉप ले आओ।" अब पवन अपने नगर इलाहाबाद की प्रशंसा करते हुए कहता है, "मेरे शहर में प्रदूषण नहीं है।" रोजविन्दर उसपर कटाक्ष करती हुई कहती है, "आ हा हा, पूरे विश्व में प्रदूषण गहरी चिन्ता का विषय है और ये पवन कुमार आ रहे हैं सीधे स्वर्ग से कि वहाँ प्रदूषण नहीं है। तुम इलाहाबाद के बारे में रोमांटिक होना कब छोड़ोगे ?"

इस पर रोजू पवन का बचाव करती हुई कहती है, "वाट ही मीन्स, वहाँ प्रदूषण कम है।" इसके साथ ही वह पवन से ही यह तीखा–सा प्रश्न करती है, "वैसे पवन मैंने सुना है यू.पी. में अभी भी किचेन में लकड़ी के चूल्हे पर खाना बनता है। तब वहाँ घर में धुआँ भर जाता होगा।"

आगे पवन का कथन है, "इलाहाबाद गाँव नहीं, शहर है, कावल टाउन। शिक्षा में उसे 'पूर्व का ऑक्सफ़ोर्ड' कहते हैं।"[5]

4. युवा पीढ़ी का जीवन–संघर्ष : इस उपन्यास में वर्तमान युग के युवकों के परिश्रम और संघर्ष को अनेक स्थलों पर खुलकर वाणी प्रदान की गई है।

1. यथा एक अध्याय के अन्त में लेखिका ने स्वयं इन युवकों की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि 'अटैची में कपड़े, आँखों में सपने और अन्तर् में आकुलता लिए न जाने कहाँ–कहाँ से नौजवान लड़के नौकरी की खातिर इस शहर (अहमदाबाद) में आ पहुँचे हैं। बड़ी–बड़ी सर्विस इंडस्ट्री में कार्यरत ये नवयुवक सवेरे नौ से रात नौ तक अथक परिश्रम करते हैं। एक दफ्तर के दो–तीन लड़के मिलकर तीन या चार हज़ार तक के किराए का एक फ्लैट ले लेते हैं। सभी बराबर का शेयर करते हैं किराया, दूध का बिल, टॉयलेट का सामान, लांड्री का खर्च। इस अनजान शहर में रम जाना उनके आगे नौकरी में जम जाने जैसी ही चुनौती है, हर स्तर पर। कहाँ अपने घर में ये लड़के शहजादों की तरह रहते थे, कहाँ सारी सुख–सुविधाओं से वंचित, घर से इतनी दूर ये सब सफलता के संघर्ष में लगे हैं। न इन्हें भोजन की चिन्ता है, न आराम की। एक आँख कम्प्यूटर पर गड़ाए ये भोजन की रस्म अदा कर लेते हैं और फिर लग जाते हैं कम्पनी के व्यापार–लक्ष्य सिद्ध करने में। ज़ाहिर है, व्यापार या लाभ–लक्ष्य इतने ऊँचे होते हैं, कि सिद्धि का सुख हर एक को हासिल नहीं होता। सिद्धि इस दुनिया में एक चारपहिया दौड़ है, जिसमें स्टियरिंग आपके हाथ में है, पर बाकी सारे 'कंट्रोल' कम्पनी के हाथ में। वही तय करती है आपको किस रफ्तार से दौड़ना है और कब तक।'[6]

2. इस उपन्यास में जहाँ वर्तमानकालीन भारत में चारों ओर फैली हुई बेकारी की भयावनी समस्या पर आलोक–प्रक्षेपण किया गया है, वहाँ नई उपभोक्तावादिनी संस्कृति के बढ़ते हुए आकर्षण और प्रभाव के कारण युवा पीढ़ी द्वारा नई औद्योगिक कम्पनियों में अच्छी नौकरियों के लिए अपेक्षित शिक्षा और प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद अपनी आजीविका कमाने के लिए निरन्तर संघर्ष करने की **लम्बी 'दौड़'** को भी रेखांकित किया गया है। उदाहरणतः पवन के मन में अपने जन्म–नगर इलाहाबाद में रहने का कोई भी पारम्परिक मोह–भाव शेष नहीं रह गया था। वह अपने पिता द्वारा सुझाए गए दिल्ली और कोलकाता जैसे महानगरों में जाने के लिए भी कदापि तैयार न था। वह अपने पिता को अपनी मनोकामना से अवगत करवाते हुए ये शब्द कहता है, "पापा, मेरे लिए शहर महत्त्वपूर्ण नहीं है, कैरियर है। अब कलकत्ते को ही लीजिए। कहने को महानगर है, पर मार्केटिंग की दृष्टि से एकदम लद्धड़। कलकत्ते में प्रोड्यूसर्स का मार्केट है, कंज़्यूमर्स का नहीं। मैं ऐसे शहर में रहना चाहता हूँ, जहाँ कल्चर हो न हो, कंज़्यूमर कल्चर ज़रूर हो। मुझे संस्कृति नहीं, उपभोक्ता–संस्कृति चाहिए, तभी मैं कामयाब रहूँगा।"[7]

2. इसी वाद–विवाद के मध्य पवन और सघन की माँ रेखा के बारे में लेखिका ने जो यह वक्तव्य दिया है, इसमें भी आजकल नई पीढ़ी के छात्रों के लिए अपनी आजीविका बनाने में आने वाली अनेक कठिनाइयों के बारे में कहा गया है। उपन्यास के ही अनुसार, 'रेखा का चचेरा भाई भी नागपुर में मार्केटिंग मैनेजर था। उसे थोड़ा अन्दाज़ था कि इस क्षेत्रा में कितनी स्पर्धा होती है। वह एक फटीचर पाठशाला में अध्यापिका थी। उसके लिए बेटे की कामयाबी गर्व का विषय थी। उसकी सहयोगी अध्यापिकाओं के बच्चे पढ़ाई के बाद तरह–तरह के संघर्षों में लगे थे। कोई आई.ए.एस. परीक्षाओं को पार नहीं कर पा रहा था, तो किसी को बैंक की प्रतियोगी परीक्षा सता रही थी। किसी का बेटा इंटरव्यू में असफल होने के बाद नशे की लत में पड़ गया था, तो किसी की बेटी हर साल पी.एम.टी. में अटक

जाती। जीवन के पचपनवें साल में रेखा को यह सोचकर बहुत अच्छा लगता कि उसके दोनों बच्चे पढ़ाई में अव्वल रहे और उन्होंने खुद ही अपने कैरियर की दिशा तय कर ली। सघन अभी छोटा था, पर वह भी जब अपने कैरियर पर विचार करता, उसे दूसरे शहरों में ही सम्भावनाएँ नज़र आतीं। वह दोस्तों से माँगकर देश–विदेश के कम्प्यूटर 'जर्नल' पढ़ता। उसका ज़्यादा समय ऐसे दोस्तों के घरों में बीतता, जहाँ कम्प्यूटर होता।

5. बेकारी की समस्या : इस समय देश में बेरोज़गारी की समस्या निर्धनता की समस्या के बाद दूसरे स्थान पर सबसे भयावनी समस्या मानी जाती है और पिछले कई दशकों से जनता इन और ऐसी ही अन्य समस्याओं से परेशान हैं। यद्यपि सरकारी और ग़ैरसरकारी संस्थाओं आदि की ओर से बेकारी की समस्या को सुलझाने के लिए अनेक पग उठाए जा रहे हैं, तथापि अभी तक इस समस्या के निराकरण में कोई ठोस प्रगति देखने में नहीं आई है। देश में लाखों युवक प्रत्येक वर्ष विभिन्न उपाधियाँ लेकर शिक्षण–संस्थाओं से निकलते हैं और कोई ढंग की नौकरी न मिल पाने के कारण अपने देश और अपने पारिवारिक सदस्यों के लिए विशेष चिन्ता का विषय बने हुए हैं। इस समीक्ष्य उपन्यास 'दौड़' में भी कुछेक स्थलों पर शिक्षित और विशेष रूप से प्रशिक्षित युवाओं को बेरोज़गारी की इसी भयावनी समस्या से दुचार होते हुए देखा जा सकता है। आगे इसी समस्या का सामना करने और इसे दूर करने के लिए चेष्टारत युवकों के कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैं :–

1. उपन्यास में संघर्ष करने वाले युवकों का एक शब्दचित्रा दर्शनीय है, 'तब ये लड़के उडुपी भोजनालय में एक मसाला दोसा खाकर सो जाते। इतनी तकलीफ़ में भी इन युवकों को कोई शिकायत न होती। अपने उद्यम में रहने और जीने का सन्तोष सबके अन्दर।'[8]

2. विभिन्न कम्पनियों में परस्पर व्यापारिक प्रतिस्पर्धा के कारण कई बार जब किसी कम्पनी को घाटे या मंदी का शिकार होना पड़ता है, तब वह कम्पनी अपने कर्मचारियों की छँटनी करनी शुरु कर दिया करती है। इसी सन्दर्भ में इस उपन्यास के ये शब्द ध्यातव्य हैं, 'जी.जी.सी.एल. लगातार घाटे में चलते–चलते अब डूबने के कगार पर थी। कर्मचारियों की छँटनी शुरु हो गई थी।' इसके आगे लेखिका ममता कालिया प्रतीकात्मक और रूपकमयी भाषा का प्रयोग करते हुए लिखती हैं कि 'एम.बी.ए. पास लड़कों में इतना धैर्य नहीं था कि वे डूबते जहाज़ का मस्तूल सँभालते। सभी किसी–न–किसी विकल्प की खोज में थे।'[9]

6. विज्ञापनबाज़ी का प्रभाव : इस उपन्यास में उपभोक्तावादी और बाज़ारवादी संस्कृति को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है। इसी लक्ष्य को 'हाई लाइट' करने के कारण इसमें बाज़ारवादी मूल्यों और सीमाओं आदि का उरेहन करना नितान्त स्वाभाविक ही था। जब शरद अपने मित्रा पवन से यह शिकायत करता है कि जिस कम्पनी में वह नौकरी करता है, वह सनशाइन बूट पॉलिश बनाया करती है, किन्तु आजकल इस ब्राँड की पॉलिश का व्यापार मन्दा चल रहा है। यह जानकर कथानायक पवन अपने मित्रा को यह सुझाव देता है कि उसकी कम्पनी द्वारा यह पॉलिश बेचने वाले दुकानदार को इस वस्तु या उत्पादन की बिक्री बढ़ाने के लिए प्रेरणा या प्रेरकस्वरूप उपहार आदि प्रदान किए जाने चाहिएँ। यह सुनकर शरद उसे बताता है कि कम्पनी ने जब दुकानदारों को पॉलिश की बिक्री बढ़ाने के लिए कहा, तो उन्होंने अपनी दुकानों में यह उत्पाद रखने के लिए स्थान तक की कमी होना बताया। इसके बाद कम्पनी ने उन्हें (बूट पॉलिश के डीलरों को) पॉलिश रखने के लिए विशेष 'वॉल–रैक' बनवा कर दिए थे। यह सुनकर पवन ने इस उत्पाद के अधिकतर उपभोक्ता स्कूली छात्रा ही होने का तर्क देते हुए उनके लिए यह बूट–पॉलिश ख़रीदने के लिए उन्हें टॉफ़ी या पेन आदि प्रदान करने का सुझाव दिया। मित्रा शरद को यह सुझाव कुछ अच्छा लगा।

2. इसी प्रकार टुथपेस्ट की एक कम्पनी से जुड़े अभिषेक को मॉडलिंग करने वाली युवतियों से सम्पर्क स्थापित करना पड़ता था। जहाँ उसकी पत्नी राजुल का विचार है कि विज्ञापन करने–कराने वाली सभी कम्पनियाँ अपने उत्पाद बेचने के लिए अपने द्वारा किए जाने वाले सभी विज्ञापनों में सरासर झूठ बोलकर जनसाधारण की आँखों में धूल ही झोंका करती हैं। उससे वाद–विवाद करते हुए अभिषेक और उसका मित्रा पवन भी यही मानता है कि विज्ञापनों का नैतिकता से कोई भी प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध कभी नहीं होता है। कम्पनी का मुख्य लक्ष्य तो केवल अपने द्वारा तैयार किए गए उत्पादों की अधिकाधिक बिक्री करने से ही जुड़ा हुआ होता है। यही कारण है कि उनके द्वारा दूरदर्शन, रेडियो आदि संचार–साधनों पर किए जाने वाले सभी विज्ञापन उसी एक लक्ष्य की सिद्धि करने में ही सहायक हुआ करते हैं और उनका नैतिकता या नीतिपरकता से कोई भी सम्बन्ध नहीं होता है। यहाँ आज के व्यापारिक क्षेत्राों द्वारा की जाने वाली अन्यान्य प्रकार की विज्ञापनबाज़ी के सम्बन्ध में इसी उपन्यास से कुछेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं :–

1. दरअसल बाज़ार में दिन–पर–दिन स्पर्धा कड़ी होती जा रही थी। उत्पादन, विपणन और विक्रय के बीच तालमेल बैठाना दुष्कर कार्य था। एक–एक उत्पाद की टक्कर में बीस–बीस विकल्प उत्पाद थे। इन सबको श्रेष्ठ बताते विज्ञापन–अभियान थे, जिनके प्रचार–प्रसार से मार्केटिंग का काम आसान की बजाय मुश्किल होता जाता। उपभोक्ता के पास एक–एक चीज़ के कई चमकदार विकल्प थे।[10] इससे आगे टूथपेस्ट की एक कम्पनी में काम करने वाली रोजविन्दर के बारे में यह कहा गया है, "रोजविन्दर ने पुरानी कम्पनी छोड़कर इंडिया लीवर के टूथपेस्ट डिवीज़न में काम सँभाला था। उसे आजकल दुनिया में दाँत के सिवा कुछ नज़र नहीं आता था। वह कहती, "हमारी प्रोडक्ट के एक–एक आइटम को इतना प्रचारित कर दिया गया है कि अब इसमें बस साबुन मिलाने की कसर बाकी है।" रेडियो और टी॰वी॰ पर दिन में सौ बार दर्शक और श्रोता की चेतना को झकझोरता विज्ञापन मार्केटिंग के प्रयासों में चुनौती और चेतावनी का काम किया करता है। उपभोक्ता बहुत ज़्यादा उम्मीद के साथ टूथपेस्ट खरीदता है, जो एकबारगी पूरी न होती दिखती है। उपन्यास के ही शब्दों में "वह वापस अपने पुराने टूथपेस्ट पर आ जाता, बिना यह सोचे कि उसे अपने दाँतों की बनावट, खान–पान के प्रकार और प्रकृति की वंशानुगत सीमाओं पर भी ग़ौर करना चाहिए।"[11]

2. कभी–कभी ऐसा भी होता है कि कोई कम्पनी जब अपने किसी अधिकारी के द्वारा समाज के किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति को अपना कोई उत्पाद बेच देती या केवल उपहारस्वरूप ही दे डाला करती है, तब उस व्यक्ति के नाम को भुनाने का उसे एक स्वर्ण अवसर मिल जाया करता है। इस उपन्यास में जब पवन जाकर एक धर्म–संस्थान के संचालक जलाराम जी बाबा के पुजारी को गुर्जर गैस का महत्त्व

समझाकर उसे छह गैस कनेक्शन देने का आर्डर उससे ले आता है, तब उपन्यास के ही विवरण के अनुसार, 'कुछ ही देर में जलराम बाबा के भक्तों और समर्थकों में ख़बर फैल गई कि बाबा ने गुर्जर गैस वापरने (इस्तेमाल करने) का आदेश दिया है। देखते–ही–देखते शाम तक पवन और अनुपम ने 264 गैसे–कनेक्शन का आदेश प्राप्त कर लिया।[12]

3. उपन्यास में ही यह उल्लेख भी अवलोकनीय है, 'अभिषेक जिस विज्ञापन कम्पनी में काम करता था, उसमें आजकल एक अन्य कम्पनी की टक्कर में टूथपेस्ट–युद्ध छिड़ा हुआ था। दोनों के विज्ञापन एक–के–बाद–एक टी.वी. के चैनलों पर दिखाए जाते। एक में यदि एक डेंटिस्ट का बयान प्रमाण की तरह दिया जाता, तो दूसरे में उसी बयान का खंडन। दोनों टूथपेस्ट बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हैं। इन कम्पनियों का जितना धन टूथपेस्ट के निर्माण में लग रहा था, लगभग उतना ही उसके प्रचार मे। दोनों टूथपेस्ट तकरीबन एक–से थे, दोनों की रंगत भी एक थी, पर कम्पनी भिन्न होने से उनकी भिन्नता और उत्कृष्टता सिद्ध करने में होड़ मची थी। इसीलिए अभिषेक की कम्पनी क्रिसेन्ट कोर्पोरेशन को नब्बे लाख का प्रचार–अभियान मिला था।"[13]

4. "विज्ञापन कम्पनी की दुनिया परिवर्तन और आकर्षण से भरपूर थी। रोज़ नई–नई लड़कियाँ मॉडल बनने का सपना आँखों मे लिए हुए कम्पनी के द्वार खटखटातीं। उनके शोषण की आशंका से इनकार नहीं किया जा सकता था।"[14]

5. पवन के द्वारा तैयार किए गए टूथपेस्ट के एक विज्ञापन का नमूना देखें, "विज्ञापन में पार्टी का एक दृश्य था, जिसमें हीरो के कुछ कहने पर हीरोइन हँसती है। उसकी हँसी में हर दाँत से मोती गिरते हैं। हीरो उन्हें अपनी हथेली पर लोक लेता है। सारे मोती इकट्ठे होकर 'स्पार्कल' टूथपेस्ट की ट्यूब बन जाते हैं। अगले शॉट में हीरो–हीरोइन लगभग चुम्बनबद्ध हो जाते हैं।"[15]

6. पूर्वोक्त विज्ञापन के अच्छे होने पर भी अभिषेक की ईष्यालु पत्नी राजुल उससे व्यंग्यपूर्वक कहती है, "सोच रही थी, विज्ञापन कितनी अतिशयोक्ति करते हैं। सच्चाई यह है कि न किसी के हँसने से फूल झरते हैं, न मोती, फिर भी मुहावरा है कि लीक पीट रहा है।" इसके उत्तर में उसका पति अभिषेक कहता है, "सच्चाई तो यह है कि मॉडल लीना भी 'स्पार्कल' (टूथपेस्ट का नाम) इस्तेमाल नहीं करती। वह प्रतिद्वन्द्वी कम्पनी का 'टिक्को' (टूथपेस्ट का नाम) इस्तेमाल करती है। पर हमें सच्चाई नहीं, प्रॉडक्ट बेचनी है।"[16] आगे चलकर भी वह कहता है, "आज तक मैंने कोई ऐसा विज्ञापन नहीं देखा, जो कहता हो, यह चीज़ न ख़रीदिए।.....विज्ञापन की दुनिया खर्च और बिक्री की दुनिया है। हम सपनों के सौदागर हैं, जिसे चाहिए बाज़ार जाए, सपनों और उम्मीद से भरी ट्यूब ख़रीद ले। ये विज्ञापन का ही कमाल है कि हमारे तीन सदस्यों वाले परिवार में तीन तरह के टूथपेस्ट आते हैं।"[17]

7. अभिषेक अपनी पत्नी राजुल से आगे भी कहता है, "टूथपेस्ट तो फिर भी गनीमत है, तुम्हें पता है, डिटरजेंट के विज्ञापन में और भी अंधेर है। हम लोग सोना डिटरजेट की एड फ़िल्म जब शूट कर रहे थे, तो सीवर्स के क्लीन डिटरजेंट से हमने बाल्टी में झाग उठवाए थे। क्लीन में सोना से ज़्यादा झाग पैदा करने की ताक़त है।"[18]

8. विज्ञापनों के सम्बन्ध में अभिषेक–राजुल दम्पति के परस्पर वाद–विवाद का अन्त करते हुए इनका ही मित्रा पवन कहता है, "दरअस्ल बाज़ार के अर्थशास्त्रा में नैतिकता जैसा शब्द लाकर, राजुल, तुम सिर्फ़ कनफ़्यूजन फैला रही हो। मैंने अब तक पाँच सौ किताबें तो मैनेजमेंट और मार्केटिंग पर पढ़ी होंगी। उनमें नैतिकता पर कोई चैप्टर नहीं है।"[19]

9. 'अभिषेक ने विज़ुअलाइजर से आइडिया समझा। स्क्रिप्ट लिखी गई। अब विज्ञापन–फिल्म बननी थी। उन्हें ऐसे मॉडल की तलाश थी, जिसके व्यक्तित्व में दाँत प्रधान हों, साथ ही वह खूबसूरत भी हो। इसके अलावा दो–एक पंक्ति के डायलॉग बोलने का उसे शऊर हो। उनके पास मॉडल की एक स्थायी सूची थी, पर इस वक्त वह काम नहीं आ रही थी। मुश्किल यह थी कि किसी भी उत्पाद का प्रचार करने में एक मॉडल का चेहरा दिन में इतनी बार मीडिया संजाल पर दिखाया जाता कि वह उसी उत्पाद के विज्ञापन से चिपककर रह जाता। अगले किसी उत्पाद के विज्ञापन में उस मॉडल को लेने से विज्ञापन ही पिट जाता। नये चेहरों की भी कमी नहीं थी। रोज़ ही इस क्षेत्रा में नई लड़कियाँ आती जा रही थीं, जो जोखिम उठाने को तैयार थीं, पर उन्हें मॉडल बनाए जाने का भी एक तन्त्रा था। अगर सब कुछ तय होने के बाद कैमरामैन उसे नापास कर दे, तब भी उसे लेना मुश्किल था।"[20]

10. उपन्यास में एक स्थल पर अभिषेक और उसकी पत्नी राजुल में किसी एक मॉडल को विज्ञापन के उद्देश्य से लेने–न लेने की बात को लेकर पति–पत्नी में कलह आरम्भ हो चुका था। उपन्यास के ही शब्द हैं, 'आजकल अभिषेक के जिम्मे मॉडल का चुनाव था। वह एक ब्यूटी–पार्लर की मालकिन **निकिता** पर दबाव डाल रहा था कि वह अपनी बेटी **तान्या** को मॉडलिंग करने दे। इस सिलसिले में वह कई बार **'रोज़ेज़ पार्लर'** में गया। इसी को लेकर पति–पत्नी में तनाव हो गया।...राजुल का मानना था कि रोज़ेज़ अच्छी जगह नहीं है। वहाँ सौन्दर्य–उपचार की आड़ में ग़लत धँधे होते हैं। उसका कहना था कि विज्ञापन–फ़िल्म बनाने का काम उनकी कम्पनी की मुम्बई इकाई करे। यहाँ अहमदाबाद में अच्छी फ़िल्म बनाना मुमकिन नहीं है। अभिषेक का कहना था कि वह बम्बइया फिल्मों से अघा गया है, वह यहीं मौलिक काम कर दिखाएगा।'[21]

11. अभिषेक तर्क देते हुए अपनी रुष्ट पत्नी राजुल को समझाने की मुद्रा में उससे कहे चला जाता है, "ओ शिट ! सीधा–सादा एक प्रॉडक्ट बेचना है, इसमें तुम नैतिकता और सच्चाई जैसे भारी भरकम सवाल मेरे सिर पर दे मार रही हो। मैंने आई.आई.एम. में दो साल भाड़ नहीं झोंका। वहाँ से मार्केटिंग सीखकर निकला हूँ। आई कैन सैल ए डैड रैट। (मैं मरा चूहा भी बेच सकता हूँ)। यह सच्चाई, नैतिकता सब मैं दर्जा चार तक मॉरल साइंस में पढ़कर भूल चुका हूँ। मुझे इस तरह की डोज़ मत पिलाया करो।"[22]

12. रोजविन्दर ने पुरानी कम्पनी छोड़कर इंडिया लीवर के टूथपेस्ट डिवीज़न में काम सँभाला था। उसे आजकल दुनिया में दाँत के सिवा कुछ नज़र नहीं आता था। वह कहती, "हमारी प्रोडक्ट के एक–एक आइटम को इतना प्रचारित कर दिया गया है कि अब इसमें बस साबुन मिलाने की कसर बाकी है।" रेडिया और टी.वी. पर दिन में सौ बार दर्शक और श्रोता की चेतना को झकझोरता विज्ञापन मार्केटिंग के प्रयासों में चुनौती और चेतावनी का काम करता। उपभोक्ता बहुत ज़्यादा उम्मीद के साथ टूथपेस्ट खरीदता, जो एकबारगी पूरी न होती दिखती। वह वापस अपने पुराने टूथपेस्ट पर आ जाता, बिना यह सोचे कि उसे अपने दाँतों की बनावट, खानपान के प्रकार

और प्रकृति और वंशानुगत सीमाओं पर भी ग़ौर करना चाहिए।"[23] समग्रतः यह उपन्यास उपभोक्तावादी और बाज़ारवादी संस्कृति के मूलाधार विज्ञापनों पर विशेष रूप से प्रकाश डालता है।

7. प्राइवेट और पब्लिक सेक्टर की कम्पनियों में परस्पर होड़ : इस उपन्यास में भारत में आजकल सरकारी और ग़ैरसरकारी कम्पनियों के बीच अपने उत्पादनों को खपाने और अधिकतम लाभ कमाने के लक्ष्य को लेकर होने वाली गलाकाट प्रतियोगिता के कई प्रमाण मिलते हैं। उपन्यास के आरम्भ में ही लेखिका द्वारा कथानायक पवन की नौकरी के सम्बन्ध में किया गया वर्णन इस प्रकार है, "वहीं उसे यह भी ख़बर हुई कि नरूलाज़ में रोज़ बीस सिलिण्डर की खपत है। आई.ओ.सी. अपने एजेंट के ज़रिए उन पर दबाव बनाए हुई है कि वे साल भर का अनुबन्ध उनसे कर लें। गुर्जर गैस ने भी अर्ज़ी लगा रखी है। आई.ओ.सी. की गैस कम दाम की है। सम्भावना तो यही बनती है कि उनके एजेंट शाह एंड शाह अनुबन्ध पा जाएँगे, पर एक चीज़ पर बात अटकी है। कई बार उनके यहाँ माल की सप्लाई ठप पड़ जाती है। पब्लिक सेक्टर के सौ पचड़े। कभी कर्मचारियों की हड़ताल, तो कभी चालकों की शर्तें। इनके मुक़ाबले गुर्जर गैस में माँग और आपूर्त्ति के बीच ऐसा सन्तुलन रहता है कि उनका दावा है कि उनका प्रतिष्ठान सन्तुष्ट उपभोक्ताओं का संसार है।"[24]

2. आगे चलकर जब कम्पनी के द्वारा पवन और उसके साथी अनुपम का स्थानान्तरण अहमदाबाद से राजकोट कर दिया जाता है, तब वहाँ जाकर उनका काम पहले से बहुत बढ़ जाता है। उपन्यास के ही ये शब्द गैस–कम्पनियों की कार्य–पद्धति पर प्रकाश–प्रक्षेपण करते हैं, "गुर्जर गैस सौराष्ट्र के गाँवों में अपने पाँव पसार रही थी। इसके लिए वह अपने नए प्रशिक्षार्थियों को दौरे और प्रचार का व्यापक कार्यक्रम समझा चुकी थी। सूचना, ऊर्जा, वित्त और विपणन के लिए अलग–अलग टीम ग्राम–स्तर पर कार्य करने निकल पड़ी थी। यों तो पवन और अनुपम भी अभी नए ही थे, पर इन्हें उन 26 प्रशिक्षार्थियों के कार्य का आकलन और संयोजन करना था। राजकोट में वे एक दिन टिकते, कि अगले ही दिन उन्हें सूरत, भरूच,, अंकलेश्वर के दौरे पर भेज दिया जाता, फिर अगला मुकाम।"[25]

2. अभिषेक और पवन की परस्पर बातचीत से समाज में पब्लिक और प्राइवेट सेक्टर की कार्य–शैली पर विशेष प्रकाश पड़ता है। इन दोनों के ये संवाद विचारणीय हो सकते हैं :–अभिषेक ने कहा, "निजी सेक्टर में सबसे खराब बात यही है, नथिंग इज़ ऑन पेपर। एम.डी. ने कहा घाटा है, तो मानना पड़ेगा कि घाटा है। पब्लिक सेक्टर में कर्मचारी सिर पर चढ़ जाते हैं, पाई–पाई का हिसाब दिखाना पड़ता है।"

पवन कहता है, "फिर भी पब्लिक सेक्टर में बीमार इकाइयों की बेशुमार संख्या है। प्राइवेट सेक्टर में ऐसा नहीं है।अभिषके हँसा, "मुझसे ज़्यादा कौन जानेगा। मेरे पापा और चाचा दोनों पब्लिक सेक्टर में हैं। आजकल दोनों की कम्पनी बन्द चल रही है। पर पापा और चाचा दोनों बेफ़िक्र हैं। कहते हैं, लेबर कोर्ट से जीतकर एक–एक पैसा वसूल कर लेंगे।" अभिषेक की कम्पनी की साख ऊँची थी और अभिषेक वहाँ पाँच साल से था, पर नौकरी को लेकर असुरक्षा–बोध उसे था। यहाँ हर दिन अपनी कामयाबी का सबूत देना पड़ता। कई बार क्लायंट को पसन्द न आने पर अच्छी भली कॉपी में तब्दीली करनी पड़ती, तो कभी पूरा प्रोजेक्ट ही कैन्सिल हो जाता। तब उसे लगता वह नाहक विज्ञापन –प्रबन्धन में फँस गया। कोई सरकारी नौकरी की होती, चैन की नींद सोता। पर पटरी बदलना रेलों के लिए सुगम होता है, ज़िन्दगी के लिए दुर्गम। अब यह उसका परिचित संसार था, इसी में उसका संघर्ष और सफलता निहित थी।"[26]

8. प्राकृतिक दृश्य और वातावरण : वैसे तो इस उपन्यास में प्रकृति का चित्राण फिर भी कहीं–कहीं अपवादस्वरूप और वातावरण के विषय में टिप्पणी करने का कहीं अवकाश नहीं था, कुछेक छिटपुट वर्णन मिल जाते हैं। यथा :–

1. सूरत के पास हजीरा में भी पवन और अनुपम गए। वहाँ कम्पनी के तेल के कुएँ थे, लेकिन पहली अनुभूति कम्पनी के वर्चस्व की नहीं, अरब महासागर के वर्चस्व की हुई। एक तरफ़ हरे–भरे पेड़ों के बीच स्थित बड़ी–बड़ी फ़ैक्टरियाँ, दूसरी तरफ़ हहराता अरब सागर।"[27] यहाँ प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्राण ध्यातव्य है।

2. इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर आध्यात्मिक, दार्शनिक और धार्मिक वातावरण का भी अंकन देखते ही बनता है। उपन्यास के ही शब्द हैं, 'राजकोट–जूनागढ़ लिंक रोड पर दाहिने हाथ को विशाल फाटक पर 'ध्यान शिविर सरल मार्ग' का बोर्ड लगा था। तक़रीबन एक स्वतन्त्रा नगर बसा था। कारों का काफिला आ और जा रहा था। इतनी भीड़ थी कि उसमें किरीट को ढूँढना मुमकिन नहीं था।..... वहीं आगे लाल और पीले रंग का पंडाल था। दूसरी तरफ़ तरतीब से तम्बू लगे हुए थे। कुछ तम्बुओं के बाहर कपड़े सूख रहे थे। उस भाग में भी एक फाटक था, जिसपर लिखा था–'प्रवेश निषेध'। पंडाल के अन्दर जब पवन घुसने में सफल हुआ, तब स्वामी जी का प्रवचन समापन–प्रक्रिया में था। वे निहायत शान्त, संयत, गहन गम्भीर वाणी में कह रहे थे, "प्रेम करो, प्राणि मात्रा से प्रेम करो। प्रेम टेलीफ़ोन कनेक्शन नहीं है, जो आप सिर्फ़ एक मनुष्य से बात करें। प्रेम वह आलोक है, जो समूचे कमरे को, समूचे जीवन को आलोकित करता है, अब हम ध्यान करेंगे, ओम्।"

उनके 'ओम्' कहते ही पाँच हज़ार श्रोताओं से भरे पंडाल में सन्नाटा खिंच गया। जो जहाँ बैठा था, वैसा ही आँख मूँदकर ध्यानमग्न हो गया। आँखें बन्द कर पाँच मिनट बैठने पर पवन को भी असीम शान्ति का अनुभव हुआ।[28]

3. इससे कुछ ही आगे सरल मार्ग के आध्यात्मिक चिन्तन–मनन के प्रयोजन से गंगा के प्रयाग–स्थित तट पर आने वाले तीर्थयात्रियों का वर्णन करते हुए लेखिका ने अपनी तत्त्वान्वेषिणी मेधा का ही परिचय देते हुए यह वक्तव्य लिखा है, जोकि कथानायक पवन को प्रवक्ता बनाकर उसी की सोच के माध्यम से आया है। वह कहती हैं कि 'सरल माग मिशन के भक्त उन भक्तों से नितान्त भिन्न थे, जो उस (पवन) ने अपने शहर (इलाहाबाद) में साल–दर–साल माघ मेले में आते देखे थे। दीनता की प्रतिमूर्त्ति बने वे भक्त असाध्य कष्ट झेलकर प्रयाग के संगम तट पर पहुँचते। निजी सम्पदा के नाम पर उनके पास एक अदद मैली–कुचैली गठरी होती, साथ में बूढ़ी माँ या आजी और अंटी में गठियाये दस–बीस रुपए। कुम्भ के पर्व पर लाखों की संख्या में ये भक्त गंगा मैया तक पहुँचते, डुबकी लगाते और मुक्ति की कामना के साथ घर वापस लौट जाते। **संज्ञा की बजाय सर्वनाम** बनकर जीते वे भक्त बस इतना समझते कि गंगा पतित पावन है और उनके कृत्यों की तारिणी। इससे ऊपर तर्कशक्ति विकसित करना उनका अभीष्ट नहीं था।"[29]

उपन्यास के अन्त में लेखिका ममता कालिया ने अपने जीवन, व्यक्तित्व और कर्तृत्व के सम्बन्ध में एक लम्बी भूमिका और जोड़ दी है। इसके भी अन्त में ये अपने विचार व्यक्त करती हुई आज के मानवीय जीवन के सांस्कृतिक संकट पर एक संक्षिप्त–सी टिप्पणी करती हुई कहती हैं, "महज़ नागरिक बनकर रहना भी एक चुनौती बनता जा रहा है। समाज में इतनी हिंसा और भौतिक हित–साधन की कामना इससे पूर्व मैंने कभी नहीं देखी। अपनी संवेदनाओं को स्थगित करते हुए मनुष्य एक ऐसी दुनिया में बसने को आतुर है, जहाँ संस्कृति की जगह उपभोक्ता–संस्कृति है और एथिक्स की जगह प्रोफ़ेशल एथिक्स। इसके लिए वह अपने समेत किसी का भी जीवन जोखिम में डाल सकता है। ज़रूरत और हवस में अन्तर करना वह भूलता जा रहा है। ज़रूरी नहीं कि सफल इन्सान एक अच्छा इन्सान भी कहलाए। आदिम और उत्तर आधुनिक समय के संक्रान्ति–कालों में बस इतना फ़र्क है कि आज अपनी बर्बरता का सचित्रा लेखा–जोखा रखने के लिए हमारे पास कैमरा, कलम भी है और कम्प्यूटर भी।"[30]

निष्कर्ष : समग्रतः कहा जा सकता है कि ममता कालिया के इस नवीनतम और अन्तिम प्रकाशित उपन्यास **'दौड़'** में अपने समकाल को रेखांकित करने की भरपूर चेष्टा सिद्धहस्त लेखनी वाली प्रौढ़ लेखिका द्वारा की गई है। विषय केचुनाव–सम्बन्धी अछूते कथ्य से लेकर परिष्कृत और कुछ सीमा तक नव्य कथा–शिल्प में अपने समसामयिक देशकाल और परिवेश से जुड़ी बहुमुखी समाजार्थिक और नैतिक समस्याओं के उरेहन तक यह उपन्यास हिन्दी उपन्यासों, विशेषतः लघु उपन्यासों के इतिहास में एक नया मील–पत्थर कहा जा सकता है। इस उपन्यास में अन्तर्वस्तु और शिल्प दोनों ही धरातलों पर लेखिका को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है।

सन्दर्भिका :

1. कालिया, ममता, उपन्यास 'दौड़', पृष्ठ 11.
2. वही, वही, वही, पृष्ठ 12.
3. वही, वही, वही, पृष्ठ 17.
4. वही, वही, वही, पृष्ठ 17.
5. वही, वही, वही, पृष्ठ 18, 19.
6. वही, वही, वही, पृष्ठ 19, 20.
7. वही, वही, वही, पृष्ठ 40, 41.
8. वही, वही, वही, पृष्ठ 52.
9. वही, वही, वही, पृष्ठ 61.
10. वही, वही, वही, पृष्ठ 22.
11. वही, वही, वही, पृष्ठ 22, 23.
12. वही, वही, वही, पृष्ठ 29.

पता :– डॉ॰ कामना कौशिक, विभागाध्यक्ष हिंदी, सी0 एम0 के0 नैशनल पी0 जी0 गर्ल्ज़ कॉलेज, सिरसा ।